दृष्टिवाद का स्वरूप

आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा.

बारहवाँ अंग आगम दृष्टिवाद इस समय अनुपलब्ध है। इसके पाँच विभागों का उल्लेख मिलता है– १. परिकर्म, २. सूत्र, ३. पूर्वगत, ४. अनुयोग और ५. चूलिका। सम्प्रति उपलब्ध स्रोतों के आधार पर प्रस्तुत आलेख में दृष्टिवाद का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। यह लेख आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी महाराज द्वारा रचित "जैन धर्म का मौलिक इतिहास, भाग–२" से साभार उद्धृत किया गया है। **–सम्पादक**

दिट्ठिवाय-दृष्टिवाद-दृष्टिपात—यह प्रवचनपुरुष का बाहरवां अंग है, जिसमें संसार के समस्त दर्शनों और नयों का निरूपण किया गया है।[१] अथवा जिसमें सम्यक्त्व आदि दृष्टियों अर्थात् दर्शनों का विवेचन किया गया है।[२]

दृष्टिवाद नामक यह बारहवां अंग विलुप्त हो चुका है, अत: आज यह कहीं उपलब्ध नहीं होता। वीर निर्वाण सं. १७० में श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु के स्वर्गगमन के पश्चात् दृष्टिवाद का ह्रास प्रारम्भ हुआ और वी.नि. सं. १००० में यह पूर्णत: (शब्द रूप से पूर्णत: और अर्थ रूप में अधिकांशत:) विलुप्त हो गया।[३]

स्थानांग में दृष्टिवाद के दस नाम बताये गये हैं जो इस प्रकार हैं— १. दृष्टिवाद २. हेतुवाद ३. भूतवाद ४. तथ्यवाद ५. सम्यक्वाद ६. धर्मवाद ७. भाषाविचय अथवा भाषाविजय ८. पूर्वगत ९. अनुयोगगत और १०. सर्वप्राण— भूतजीवसत्त्वसुखावह।[४]

समवायांग एवं नन्दीसूत्र के अनुसार दृष्टिवाद के पांच विभाग कहे गये हैं— परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत, अनुयोग और चूलिका।[५] इन पांचों विभागों के विभिन्न भेदप्रभेदों का समवायांग एवं नन्दीसूत्र में विवरण दिया गया है, जिनका सारांश यह है कि दृष्टिवाद के प्रथम विभाग परिकर्म के अन्तर्गत लिपिविज्ञान और सर्वांगपूर्ण गणित विद्या का विवेचन था। इसके दूसरे भेद सूत्रविभाग में छिन्न—छेद नय, अछिन्न—छेद नय, त्रिक नय तथा चतुर्नय की परिपाटियों में से प्रथम— छिन्न छेद नय और चतुर्थ चतुर्नय ये दो परिपाटियां निर्ग्रन्थों की और अछिन्न छेदनय एवं त्रिकनय की परिपाटियां आजीविकों की कही गयी है।

दृष्टिवाद का तीसरा विभाग— पूर्वगत विभाग अन्य सब विभागों से अधिक विशाल और बड़ा महत्त्वपूर्ण माना गया है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित १४ पूर्व थे—

1. **उत्पादपूर्व**– इसमें सब द्रव्य और पर्यायों के उत्पाद (उत्पत्ति) की प्ररूपणा की गई थी।[६] इसका पदपरिमाण १ कोटि माना गया है।

2. **अग्रायणीयपूर्व**– इसमें सभी द्रव्य, पर्याय और जीवविशेष के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अग्रपरिमाण का वर्णन किया गया था। इसका पद परिमाण ६९ लाख पद माना गया है।

3. **वीर्यप्रवाद**– इसमें सकर्म एवं निष्कर्म जीव तथा अजीव के वीर्य-शक्तिविशेष का वर्णन था। इसकी पद संख्या ७० लाख मानी गई है।

4. **अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व**– इसमें वस्तुओं के अस्तित्व तथा नास्तित्व के वर्णन के साथ-साथ धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों का अस्तित्व और खपुष्प आदि का नास्तित्व तथा प्रत्येक द्रव्य के स्वरूप से अस्तित्व एवं पररूप से नास्तित्व का प्रतिपादन किया गया था। इसका पदपरिमाण ६० लाख पद बताया गया है।

5. **ज्ञानप्रवादपूर्व**– इसमें मतिज्ञान आदि ५ ज्ञान तथा इनके भेद–प्रभेदों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया था। इसकी पदसंख्या १ करोड़ मानी गई है।

6. **सत्यप्रवादपूर्व**– इसमें सत्यवचन अथवा संयम का, प्रतिपक्ष (असत्यों के स्वरूपों) के विवेचन के साथ-साथ विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया था। इसमें कुल १ करोड़ और ६ पद होने का उल्लेख मिलता है।

7. **आत्मप्रवादपूर्व**– इसमें आत्मा के स्वरूप,उसकी व्यापकता, ज्ञातृभाव तथा भोक्तापन संबंधी विवेचन अनेक नयमतों की दृष्टि से किया गया था। इसमें २६ करोड़ पद माने गये हैं।

8. **कर्मप्रवादपूर्व**– इसमें ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों का, उनकी प्रकृतियों, स्थितियों, शक्तियों एवं परिमाणों आदि का बंध के भेद–प्रभेद सहित विस्तारपूर्वक वर्णन था। इस पूर्व की पदसंख्या १ करोड़ ८० हजार पद बताई गई है।

9. **प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व**– इसमें प्रत्याख्यान का, इसके भेद–प्रभेदों के साथ विस्तार सहित वर्णन किया गया था। इसके अतिरिक्त इस नौवें पूर्व में आचार संबंधी नियम भी निर्धारित किये गए थे। इसमें ८४ लाख पद थे।

10. **विद्यानुवादपूर्व**– इसमें अनेक अतिशय शक्तिसम्पन्न विद्याओं एवं उपविद्याओं का उनकी साधना करने की विधि के साथ निरूपण किया गया था। जिनमें अंगुष्ठ प्रश्नादि ७०० लघु विद्याओं, रोहिणी आदि ५०० महाविद्याओं एवं अन्तरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यंजन और छिन्न इन आठ महानिमित्तों द्वारा भविष्य जानने की विधि का वर्णन किया गया था। इस पूर्व के पदों की संख्या १ करोड़ १० लाख बताई गई है।

11. **अवन्ध्यपूर्व**– वन्ध्य शब्द का अर्थ है निष्फल अथवा मोघ। इसके विपरीत जो कभी निष्फल न हो अर्थात् जो अमोघ हो उसे अवन्ध्य कहते हैं। इस अवन्ध्यपूर्व में ज्ञान, तप आदि सभी सत्कर्मों को शुभफल देने वाले तथा प्रमाद आदि असत्कर्मों को अशुभ फलदायक बताया गया था। शुभाशुभ कर्मों के फल निश्चित रूप से अमोघ होते हैं, कभी किसी भी दशा में निष्फल नहीं होते। इसलिए इस ग्यारहवें पूर्व का नाम अवन्ध्यपूर्व रखा गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी पदसंख्या २६ करोड़ बताई गई है।

दिगम्बर परम्परा में ग्यारहवें पूर्व का नाम ''कल्याणवाद पूर्व'' माना गया है। दिगम्बर परम्परा की मान्यतानुसार कल्याणवाद नामक ग्याहवें पूर्व में तीर्थकरों, चक्रवर्तियों, बलदेवों, वासुदेवों और प्रतिवासुदेवों के गर्भावतरणोत्सवों, तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन करने वाली सोलह भावनाओं एवं तपस्याओं का तथा चन्द्र व सूर्य के ग्रहण, ग्रह–नक्षत्रों के प्रभाव, शकुन, उनके शुभाशुभ फल आदि का वर्णन किया गया था। श्वेताम्बर परम्परा की तरह दिगम्बर परम्परा में भी इस पूर्व की पद संख्या २६ करोड़ ही मानी गई है।

12. प्राणायु पूर्व– इस पूर्व में श्वेताम्बर परम्परा की मान्यतानुसार आयु और प्राणों का भेद–प्रभेद सहित वर्णन किया गया था।

दिगम्बर परम्परा की मान्यतानुसार इसमें काय-चिकित्सा प्रमुख अष्टांग, आयुर्वेद, भूतिकर्म, जांगुलि, प्रक्रम, साधक आदि आयुर्वेद के भेद, इला, पिंगलादि प्राण, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि तत्वों के अनेक भेद, दश प्राण, द्रव्य, द्रव्यों के उपकार तथा अपकार रूपों का वर्णन किया गया था।

श्वेताम्बरपरम्परा की मान्यतानुसार प्राणायुपूर्व की पद संख्या १ करोड़ ५६ लाख और दिगम्बर मान्यतानुसार १३ करोड़ थी।

13. क्रियाविशालपूर्व– इसमें संगीतशास्त्र, छन्द, अलंकार, पुरुषों की ७२ कलाएं, स्त्रियों की ६४ कलाएं, चौरासी प्रकार के शिल्प, विज्ञान, गर्भाधानादि कायिक क्रियाओं तथा सम्यग्दर्शन क्रिया, मुनीन्द्रवन्दन, नित्यनियम आदि आध्यात्मिक क्रियाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया था। लौकिक एवं लोकोत्तर सभी क्रियाओं का इसमें वर्णन किया जाने के कारण इस पूर्व का कलेवर अति विशाल था।

श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराएं इसकी पद संख्या ९ करोड़ मानती हैं।

14. लोकबिन्दुसार– इसमें लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार की विद्याओं का एवं सम्पूर्ण रूप से ज्ञान निष्पादित कराने वाली सर्वाक्षरसन्निपातादि विशिष्ट लब्धियों का वर्णन था। अक्षर पर बिन्दु की तरह सब प्रकार के ज्ञान का सर्वोत्तम सार इस पूर्व में निहित था। इसी कारण इसे लोकबिन्दुसार अथवा त्रिलोकबिन्दुसार की संज्ञा से अभिहित किया गया है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराओं की मान्यता के अनुसार इसकी पद संख्या साढे बारह करोड़ थी।

उपर्युक्त १४ पूर्वों की वस्तु (ग्रन्थविच्छेदविशेष) संख्या क्रमशः १०, १४,८,१८,१२,२,१६,३०,२०,१५,१२,१३,३० और २५ उल्लिखित है।[७]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौदह पूर्वों के उपर्युक्त ग्रन्थविच्छेद-वस्तु के अतिरिक्त आदि के ४ पूर्वों की क्रमशः ४,१२,८ और १० चूलिकाएं (चुल्ल क्षुल्लक) मानी गई हैं। शेष १० पूर्वों के चुल्ल अर्थात् क्षुल्ल नहीं माने गये हैं।[८]

जिस प्रकार पर्वत के शिखर का पर्वत के शेष भाग से सर्वोपरि स्थान होता है उसी प्रकार पूर्वों में चूलिकाओं का स्थान सर्वोपरि माना गयाा है।[९]

अनुयोग–अनुयोग नामक विभाग के मूल प्रथमानुयोग और गण्डिकानुयोग ये दो भेद बताये गए हैं। प्रथम मूल प्रथमानुयोग में अरहन्तों के पंचकल्याणक का विस्तृत विवरण तथा दूसरे गंडिकानुयोग में कुलकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि महापुरुषों का चरित्र दिया गया था।

दृष्टिवाद के इस चतुर्थ विभाग अनुयोग में इतनी महत्त्वपूर्ण विपुल सामग्री विद्यमान थी कि उसे जैन धर्म का प्राचीन इतिहास अथवा जैन पुराण की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है।

दिगम्बर परम्परा में इस चतुर्थ विभाग का सामान्य नाम प्रथमानुयोग पाया जाता है।

चूलिका–समवायांग और नन्दीसूत्र में आदि के चार पूर्वों की जो चूलिकाएं बताई गई हैं, उन्हीं चूलिकाओं का दृष्टिवाद के इस पंचम विभाग में समावेश किया गया है। यथा– "से किं तं चूलियाओ? चूलियाओ आइल्लाणं चउण्हं पुव्वाणं चूलिया, सेसाइं अचूलियाइं, से तं चूलियाओ।" पर दिगम्बर परम्परा में जलगत, स्थलगत, मायागत, रूपगत और आकाशगत–ये पांच प्रकार की चूलिकाएं बताई गई हैं।

संदर्भ–

१. दृष्टयो दर्शनानि नया वा उच्यन्ते अभिधीयन्ते पतन्ति वा अवतरन्ति यत्रासौ दृष्टिवादो, दृष्टिपातो वा। प्रवचनपुरुषस्य द्वादशेऽङ्गे —स्थानांग वृत्ति ठा.४,उ.१
२. दृष्टिर्दर्शनं सम्यक्त्वादि, वदनं वादो, दृष्टिनां वादो दृष्टिवादः।
—प्रवचन सारोद्वार, द्वार १४४
३. गोयमा! जंबूद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए ममं एगं वाससहस्सं पुव्वगए अणुसज्जिस्सइ।
—भगवतीसूत्र, शतक २०, उ.८, सूत्र ६७७ सुत्तागमे, पृ. ८०४
४. दिट्ठिवायस्स णं दस नामधिज्जा पण्णत्ता। तं जहा दिट्ठिवाएइ वा, हेतुवाएइ वा, भूयवाएइ वा, तच्चावाएइ वा, सम्मावाएइ वा, धम्मावाएइ वा, भासाविजएइ वा, पुव्वगएइ वा, अणुओगगएइ वा, सव्वपाणभूयजीवसत्तसुहावहेइ वा।
—स्थानांग सूत्र ठा. १०
५. से किं दिट्ठिवाए? से समासओ पंचविहे पण्णत्ते तं जहा परिकम्मे, सुत्ताइं, पुव्वगए, अणुओगे चूलिया (नन्दी)
६. पढमं उप्पायपुव्वं, तत्थ सव्वदव्वाणं पज्जवाण य उप्पायभावमंगीकाउं पण्णवणा कया। (नन्दीचूर्णि)
७. दस चोद्दस अट्ठ अट्ठारसेव बारस दुवे य वत्थूणि।
सोलस तीसा वीसा पण्णरस अणुप्पवायम्मि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बारस इक्कारसमे बारसमे तेरसेव वत्थूणि।
तीसा पुण तेरसमे चोद्दसमे पण्णवीसा उ।।

८. चत्तारि दुवालस अट्ठ चेव दस चेव चूलवत्थूणि।
आइल्लाण चउण्हं सेसाणं चूलिया नत्थि
—श्रीमन्नन्दीसूत्रम् (पू. हस्तीमल जी म.सा. द्वारा अनूदित) पृ. १४८

९. ते सव्वुवरि ठिया पढिज्जंति य अतो तेसु य पव्वय चूला इव चूला। (नन्दीचूर्णि)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org